रंग जिन्दगी के

काव्य संग्रह

शबनम शर्मा

सम्पादकीय

कवि की भावनाओं का प्रतिबिम्ब या कहा जाये कि विचारों की अभिव्यक्ति ही ‘ काव्य ‘ है ।

कोई कल्पना भाव या विचार मष्तिक के किसी कोने से कागज पर उतरता है तो वास्तव में वह अपने आसपास के जीवन , प्रेम –विरह , प्रकृति सुन्दरता , दिली भावनाओं , को ही चित्रित करता है ।

मित्रों हम सभी के लिए ये एक हर्ष की बात है कि हमारी website साहित्यकारों रचनाकारों के विकास और सम्मान के लिए प्रतिबद्ध है । इसी दिशा में सभी नए और पुराने रचनाकारों की रचनाएँ प्रतिदिन website पर प्रकाशित कर उनकी भावनाओं को साहित्य प्रेमी पाठकों तक पहुचाया जाता है।

साहित्य साधना की दिशा में एक और कदम बढ़ाते हुए www.kavyasagar.com साहित्यकारों के संग्रह प्रकाशन को न्यूनतम लगत मात्र में E book का प्रकाशन अपनी वेबसाइट पर करने का निर्णय लिया है ।

इसी क्रम में website पर कहानी संग्रह , काव्य संग्रह , ग़ज़ल संग्रह प्रकाशित किया जाना प्रस्तावित है।

रचानाकरारों और पाठकों का सहयोग सादर अपेक्षित है ।

प्रबन्ध समिति ,

www.kavyasagar.com

दो शब्द

कवयित्री शबनम शर्मा जी के काव्य – संग्रह " रंग जिन्दगी के " ने साहित्य संसार में सुनहरी कल्पनाओं के साथ पदार्पण किया है । जिसका हम तहे दिल से स्वागत करते हैं । इस काव्य संग्रह में विविध रंगी कविताओं का समायोजन देखने को मिलेगा ।

शबनम जी की हर कविता में जीवन की खूबसूरत परिभाषायें हमें पढ़ने को मिलती हैं । सरल शब्दों में बेचैन मन की कल्पनाएँ जो तूलिका से कागज पर और कागज के मन से निकल कर सीधे पाठक के दिल को गहरे तक स्पर्श कर जाती हैं । यूं कहा जा सकता है कि शबनम जी की कविताओं का कोई सानी नहीं है ।शबनम जी ने अपनी कविताओं में विभिन्न प्राकृतिक बिम्बों के माध्यम से स्वंय को और स्वंय के माध्यम से समूची नारी अस्मिता और सतरंगी प्यार को प्रस्तुत किया है ।

शबनम जी की अधिकतर कवितायें छन्द – मुक्त होती हैं जो पाठक के भीतर तक एक लय तरंगित करती हैं । आपकी कविताओं में नारी जीवन से सम्बंधित सामाजिक विडमनाओं और कुरीतियों के प्रति तीखे तेवर दर्शाए हैं । जीवन के हर रिश्ते को आपने अपनी कविताओं में ख़ूबसूरती से ढाला है । संवेदना कविता की आत्मा होती है जो शबनम जी की हर कविता में आपको दिखाई देगी ।

शबनम शर्मा को हिंदी साहित्य में बहुआयामी प्रतिभा की प्रतिमूर्ति कहें तो कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी । आपने कविता , कहानियाँ , लघु कथा लेख आदि हिंदी साहित्य के हर क्षेत्र में भारतीय समाज को अपना अमूल्य योगदान दिया है , यही नहीं इसी के साथ आपने हज़ार से अधिक गज़लें लिख कर अपनी लेखन प्रतिभा की एक अनूठी मिशाल प्रस्तुत की है ।

प्रताप सिंह नेगी

परिचय

नाम : शबनम शर्मा
जन्म : जनवरी 20,1956, जन्म स्थान: नाहन
शिक्षा : बी.ए., बी.एड.
सम्प्रति : अध्यापन
उद्देश्य : सरल भाषा में अपनी आवाज़ जन-जन तक पहुँचाना व नए लेखकों प्रोत्साहन देना। समाज को काव्य व लेखन कला से अवगत करवाना व अपने में छुपी समस्त कला व अनुभूतियो को जनसम्पर्क तक पहुँचाना।
प्रकाशन: अनमोल रत्न (काव्य संग्रह), काव्य कुँज (काव्य संग्रह) करीब 1300 ग़ज़लें, 2500 कवितायें, 10 कहानियाँ, 160 लघुकथायें और 20 के करीब ज्वलंत मुद्दों पर लेख।
प्रकाशित:समाचार पत्रों में - दैनिक ट्रिब्यून, दिव्य हिमाचल, अजीत समाचार, भास्कर, राँची एक्सप्रैस, गिरीराज, श्रोता समाचार, हिमवंती, हिम सूर्य, हिम सत्ता, इण्डिया गैप्स टुडे और सामाजिक आक्रोश
पुस्तकें:आइना-ए-ग़ज़ल (बम्बई), सर्जक (वियोग), झरोखा-2000 (हैदराबाद), संकल्पना (प्रतापगढ़), सहर (प्रतापगढ़), प्रवाह (रामपुर), काव्य रश्मि (नाहन), अभियान (बम्बई),गंगोत्री (बालाघाट), शताब्दी रत्न निदेशिक (पानीपत), समर्थन (नाहन), अमृत कलश (खंडवा) और हे मातृभूमि (नैमिश्रणाय)
पत्रिकायें: हतिगन्धा (पंचकूला), जगमगदीप (अलवर), फ्रिकरोफन (शिमला), , समाज प्रवाह (बम्बई), रैन-बसेरा (अहमदाबाद), प्रगति पथ (बुलन्द शहर),शुभ तारिका (अम्बाला), राजकला (लखनऊ), हिम ज्योति (शिमला), डैफोडिल्ज़ (नाहन),चौगान(नाहन), सुरभि (नाहन), सौहार्द (इलाहाबाद), प्रत्याक्षी, नालन्दा दर्पण (नालन्दा),पत्रकार सुमन (प्रतापगढ़), वाभंगी (मथुरा), गंगोत्री (बालाघाट), समर्थन, मरु-गुलशन (जोधपुर), त्रिवेणी साहित्य (गाज़ियाबाद), रेणुका स्मारिका (रेणुका), अखिल भारतीय होम्योपैथिक पत्रिका (खुरजा), सरोपशा (दसूहा), नारी अस्मिता (बढ़ोदरा), सतयुग की वापसी(अलवर), भैरवसुख सागर (अहमदाबाद), शब्द (लखनऊ), सौगात (बारां), शिवम (भोपाल), सुरभि समग्र (लखनऊ), दस्तक (बहादुरगढ़) और संदर्भ (रांची), में ग़ज़लें कवितायें, लेख व कहानियों का प्रकाशन। करीब 600 कविताएँ, कुछ कहानियाँ, लघु कथाएँ उपर्युक्त पत्रिकाओं, अखबारों में प्रकाशित।

विशेष : स्वरचित भजनों की कैसेट बाज़ार में।सफलता एवं सम्मान : शताब्दी रत्न (पानीपत), सुरभि साहित्य (बम्बई), आर्चाया (पानीपत), ग़ज़ल श्री (कप्तानगंज), महादेवीवर्मासम्मान(मथुरा), कवयित्रीसम्मानदिल्ली), काव्यम हारथी(इलाहाबाद), कवयित्रीसम्मान(स्टेपको, नाहन), कवयित्री सम्मान (कृपालशिला गुरुद्वारा, पाँवटा साहिब), ग़ज़ल रत्न (बम्बई), महिला रत्न (खंडवा), 'स्व. मुकीम पटेल सम्मान' (बालाघाट, म.प्र.), 'साहित्य रत्न' (राम साहित्य मंडल,नाहन), 'कवयित्री सम्मान' (प्रतापगढ़), 'कवयित्री सम्मान' (लायन्स कल्ब, नाहन), 'काव्य प्रज्ञ'(रामपुर यू.पी.), साहित्य कुम्भ "रत्नश्री", हिम आभा (रेणुका), रत्न श्री (बम्बई), उत्कृष्ट साहित्यिक सेवा हेतू कहानी महाविद्यालय अम्बाला से सम्मानित।

कवि सम्मलेन करीब 100 कवि सम्मेलनों में भागीदारी। स्थानीय, राज्य स्तरीय, राष्ट्र स्तरीय।

रुचि : ग़ज़लें लिखना व सुनना।

सम्पर्क : **शबनम शर्मा** अनमोल कंुज, पुलिस चैकी के पीछे, मेन बाजार, माजरा, तह. पांवटा साहिब, जिला सिरमौर, हि.प्र. - 173021

मोब. - 09816838909, 09638569237

shabnamsharma2006@yahoo.co.in

बिछोह

कोख में आने से
अब तक
तुम्हारा स्पर्ष,
अहसास
चहुँ ओर बिखरी
तुम्हारी यादें,
तुम्हारी खनकती हँसी,
तुम्हारी शरारतें,
फिर कई तरह की
मनुहारें,
तुम्हारे लिये खुदा से
भीख माँगना व तुम्हें
पाना,
तुम्हारे बिछोह की
कल्पना मात्र से काँप
जाना याद है मुझे
आज तुम चली गई
सुना है पराई हो गई
पर मेरा मन नहीं
स्वीकारता, क्यूँकि आज
भी धड़कता है मेरा दिल
सिर्फ तेरे लिये,
सिर्फ तेरे लिये।

पोटली

बड़े नाज़ों से पाल पोस
मैंने पकड़ा दी अपने
प्राणों की डोर किसी
अनजान पथिक को,
देना चाहती समस्त
संसार की खुषियाँ,
कुछ कल्पना भरी,
कुछ यथार्थ से जुड़ी
परन्तु कई जगह
असमर्थ हो जाती
दृढ़ता से कह सकती,
मैंने पकड़ाई है तुम्हें
जाते हुए इक यादों भरी
बड़ी कीमती पोटली।
बिटिया, जब कभी भी
मेरी याद आये, खोल
कर कुछ निकाल लेना
उसे इस्तेमाल भी करना
वही है इक याद भरी
संस्कारों की पोटली,
जो तुम्हें कभी भी
भटकने न देगी।

इन्तज़ार

बीती रात,
झकझोर दिया इक ख्याल ने
उठ बैठी
अंधेरी काली रात में
चहुँ ओर सिर्फ अन्धकार,
बुझ गये सारे दीये,
अरे, कोई टिमटिमा भी नहीं रहा,
ये बेबुनियाद लम्हें
ये सरकती सी ज़िन्दगी
पूछती सिर्फ इक सवाल
अब किसका इन्तज़ार
सलाम होता कुर्सी, जवानी व
पैसे को,
विदाई ले चुके यह सब
रह गई सिमटी सी देह,
खुष्क आँखें, कंपकंपाते हाथ,
टपकती छतें व सिलवटों
से भरे बिस्तर,
नाहक जीने की चाह,
ख्याल जीत गया,
पूछ ही बैठा दोबारा,
बता अब किसका इन्तज़ार।

धोखा

कौन, किसे, कब
धोखा देता
कितना ग़लत,
कभी नहीं।
धोखा दे रही हूँ खुद को,
बनावटी मुस्कुराकर,
झूठे-सच्चे रिश्ते बनाकर
एक उम्मीदों का गुम्बद दिखाकर
इस बेचारे दिल को,
जो सिर्फ़ धड़क सकता है
देख नहीं,
क्यों, आखिर क्यों कर रही हूँ
मैं ऐसा? ग़र सच का आईना
दिखा दिया इसे, तो शायद ये
धड़कना भी बंद कर दे।

एहसास

सौंप कर अपने दिल का
टुकड़ा तुम्हें, मैं निष्चिंत हो गई,
पर कैसे?
उग गये मेरे हृदय पटल पर
एक की जगह दो पौधे
जिन्हें साथ-साथ बढ़ता, लहराता
देखना चाहती।
छुपा लेती अपने हृदय की वेदना,
जब लू या ठंड का झोंका तुम्हें
हिला जाता।
शायद कभी एहसास हो तुम्हें, कि
कितना कठिन होता, अपने जिगर
का टुकड़ा किसी को सौंपना
व अपनी अमानत उसकी
झोली में डालना।

तस्वीर

धुंधली हो गई
सारी यादें,
सारी तस्वीरें,
चूर हो गये सारे
इरादे सारे वादे
समय का पहिया
किसे नहीं रौंदता,
पर क्यूँ नहीं
धूमिल पड़ी
वो तस्वीर, जो
तुम्हारे आने पर
छपी थी मेरे
मानस पटल पर,
सब कुछ स्वार्थहीन
सुन्दर, सलोना,
दिखाता मुझे
सदैव मेरा अक्ष
वही तस्वीर
याद करो, ज़रा याद करो।

मंगलसूत्र

तमाम रसमों-रिवाज़ निभा,
एक बड़ा जमघट बना
शोर-षराबे के माहौल में
सबकी मौजूदग़ी में
पहना दिया उसने मेरे गले में
चंद काले मोतियों का मंगलसूत्र,
जो सदैव याद दिलाता
मायके का विछोह व
सारी उम्र की उम्रकैद एक
अजनबी संग।
चाहते मिटाना मेरा सम्पूर्ण
अस्तित्व,
ढल जाऊँ, बन जाऊँ मैं
उनके घर की उस पुरानी
दहलीज़ सी,
जिसमें आई पुष्तों से कई
बहुएँ, गई कई दादियाँ।
मैं शायद बन भी गई
उस दहलीज़ का पायदान,
जिस पर सिर्फ पाँव ही पोंछे
छोटे से बड़े तक ने,
मेरा मंगलसूत्र घिस गया,
हलकी पड़ गई उसकी टिकड़ी,
मोती भी बदरंग हो गए,
पर कभी षिकायत न की,
क्योंकि ये कभी बदला नहीं जाता।
सिर्फ एक सोच,
मज़बूर करती मुझे
काष कि उस दिन पहनाया होता
किसी ने बाहों का मंगलसूत्र
जो मुझे हर वक्त देता इक सकून
इस घर को अपना कहने के लिये।

दरवाज़ा

आज कितने दिन हो गये
उन्हें गये।
हर पल इन्तज़ार है किसी
माँ, बहन या बूढ़े माँ-बाप को,
हर आहट, हवा का झोंका,
पत्तों की खड़खड़ाहट उन्हें
सोने नहीं देती।
वह तो कुंडी भी नहीं लगाते,
धीरे से सांकल लगा, सिर्फ
लेट जाते।
नींद कोसों दूर, ज़रा सी
आहट पर कई आवाज़ें,
बिटुवा, भाई, माँ, बहन
आई है सुनाई देती मुझे,
ये असहनीय, अकथनीय दर्द
जिसका कोई सानी नहीं
क्यूँ दिया प्रभु तूने।
चूंकि, जो चले गये, वो तो
नहीं लौटेंगे, लाख पुकारने
पर भी।
सज़ा भोगते ये मासूम
न जी पाएँगे, न मर पाएँगे
ताउम्र।

स्वपन

गोद में नन्हें को लिये,
मुस्करा रही थी,
खुद ही खुद बतिया
रही थी,
मेरा राजा बेटा, मेरा
राजकुमार
मेरी आँखों का तारा
मेरा राजदुलारा,
कब बड़ा होगा?
मम्मा के लिये लाएगा
इक सुन्दर सी दुलहन
घूमेगी, खाना पकाएगी,
पाँव दबाएगी,
कटेगा बुढ़ापा उस नन्हीं
सी जान की आस पर!
नहीं करेगी अलग वह
पल भर भी, इस नन्हीं जान को,
बड़ा होगा तो क्या?
उसके लिये तो 'नन्हा' ही रहेगा।
पास बैठी बेटी सुन रही सब
कि भोली भाषा में बोल बैठी
"माँ, ऐसा कुछ नहीं होगा,
तूने दादा-दादी को घर से
निकाला है,
ज़मीन पर सुलाया है,
कभी सेवा नहीं की,
पापा को उनसे बतियाने
भी नहीं दिया,
मुझे भी उनके पास
जाने नहीं दिया।"
सुनकर स्तब्ध, हैरान व बेचैन
सोच अपना वही कंटीला भविष्य
जो उसने बो दिया था।

दोराहा

दौराहे पर खड़ी जिन्दगी,
लिए कई सवाल,
कई बवाल
चहुँ ओर घोर अन्धकार,
टिमटिमाता सा इक तारा,
ममता का सहारा,
क्यूँ बार-बार मेरा हाथ
पकड़, मुझे घसीट लाता
ये उस दौराहे पर
जहाँ से आगे जाना
कठिन,
पीछे आना असंभव,
खींचता तुम्हारी ओर
सिर्फ एक ही जवाब,
कि ज़िन्दगी के बचे पल
तुम्हारे नाम हो जाएँ
लगे मुझे कि किसी काम
आए मेरे ये निश्छल पल
बूढ़ी ज़िन्दगी।

ज़िन्दगी की नाव

ज़िन्दगी की नाव,
इक लम्बी नदी,
कई उतार-चढ़ाव,
अच्छी लगी।
अचानक इक तूफ़ान
में फंसी, कि भंवर भी
समेट ले गया, पता ही
न चला, कब मेरे चप्पू
मेरे हाथों से छूट बह गये
पानी मेंख् हो गई मैं अकेली
अनाथ उस नाव पर, जिसमें
संजोए थे मैंने अनगिनत सपने,
मन आवाज़ें लगाता, चीखती मेरी
आत्मा, पर अनायास
सूख गई नदी, बह गये सपने
व धीरे-धीरे मेरी नाव भी
निकल गई मुझे छोड़कर अकेला
सिर्फ उस ऊँचे पत्थर पर,
जहाँ से कभी देख सकती थी मैं
उफनता पानी, छलकती लहरें
व उन्माद संगीत।
आती है नज़र इक उम्मीद कि
कभी पानी बरसेगा, नदी बहेगी,
मेरी नाव आयेगी,
मेरी नाव फिर से आयेगी।

मेरा कमरा

मेरे अंधेरे कमरे में,
कदम रखने से डरने लगे सब,
अंधेरा सबको काटता है
पर आज ये कालिमा मेरी है,
तुमने चिराग जलाने की कोशिश की
शुक्रिया तुम्हारा,
शायद इसलिये कि कभी
तुम भी सांझीदार थी इस
अंधेरे की
लोग जानते नहीं कि हर काली
रात के बाद इक सुबह
आयेगी ज़रूर।
कितना तोड़ा है तुमने
कि आज अपनी किरचों को
पहचानना ही कठिन है
जीवन के हर मोड़ पर थामा
तुम्हारा हाथ।
खुद को मिटा कर जलाया
तुम्हारे घर का दीया,
अफ़सोस, तुम मुँह फेर कर
चले गये,
कभी अहसास न हुआ कि
कैसे कटता है मेरा वक्त,
अधूरी ज़िन्दगी, अधूरी साँसों
के बीच।

आ, जाते हो हर शाम ढले
अपने सरूर में मगरूर
व उम्मीद, कि मैं हँसू
तुम्हें अपनी बाहों का हार,
सच में, मैं कितनी मूर्ख थी
कि दे बैठी तुम्हें जीवन साथी
काम नाम, जिसने सीखा है
सिर्फ अपना स्वार्थ सिद्ध करना
किसी भी हालात में।

कितना कठिन होता है

कितना कठिन होता है
किसी के हाथों की तरफ देखना,
एक जिंदा लाश, जिस पर
रहमों-कर्म के चंद सिक्के
फेंक दे दुनिया।
हाथ लगाते ही, लगे ये मेरा
नहीं हैं, गज़ भर लम्बी
हो जाती हैं खर्च की कतारें,
घुट जाता है दम,
बंद हो जाती है आवाज़,
शून्य हो जाते हैं शब्द,
जब कोई कहता है
"कभी ज़रूरत पड़े तो कह देना"
क्योंकि इन्हीं हाथों ने लुटाई है
ज़िन्दगी किसी के अनकहे सवालों
पर।

झूठी उम्मीद

अरे, झूठी उम्मीदों से घिरा
ये मेरा दिल,
न जाने कब, कहाँ, क्या
ढूंढ बैठे।
सहारा ले हवा के झोंके का
घूमना चाहे अम्बर, पर
अनायास ही धरती
उसे पुकार बैठे।
गलत होती हैं उम्मीदें, सपने
व सहारे
क्यूंकि हम इन्हें पाना चाहते हैं
देना नहीं,
इसीलिये समझाना होगा इस
बावरे मन को कि सिमट जाये
अपनी ही दिल की
तलहटी में।

निष्ठुर

इतने निष्ठुर हो सकते थे तुम
कभी कल्पना भी नहीं की,
तड़पती सी मछली की तरह
देख, किस तरह अनदेखा कर,
खिल्लियाँ उड़ाते, जिये हो तुम,
इक शब्द, भी
सांत्वना का दे न पाये तुम,
फिर भी दावा करते हो मेरा होने का,
नहीं, अब मैं नहीं अपना सकती तुम्हें
जीना चाहती हूँ चंद लम्हें, जिनमें
स्वार्थ की बू न हो,
सिर्फ मैं रहूँ व मेरी तनहाई
मेरे सपने।

चैराहा

ज़िन्दगी के चैराहे पर
हलाल कर मेरे जज़बात
मुझे फेंक दिया
चील-कौओं के लिये
तड़पती, चीखती रही
क्योंकि दबोची थी मेरी गर्दन
भयावह सिंह के पंजों ने,
कोई नहीं, कोई नहीं आया
मुझे छुड़ाने,
क्योंकि तमाशा देखना
अच्छा लगता है सबको
डरते हैं सब शेर के पास
आने से, चूंकि दबोच लेगा
वो उन्हें भी।
अचानक लगे कुछ भेड़िये भी
मेरी तरफ लपकने,
सिंह की पकड़ ढीली हुई
मैं उठकर भाग गई
घायल, लहुलुहान
छटपटाती,
गिरी दूर जाकर अपने बिस्तर पर।
आज चहूँ ओर से
झांकती है वही आँखें
कहती कि मैं बच कैसे गई?
विधान भगवान का,
जो करता है सही करता है
बता देता है बुरा वक्त
अपने पराये की पहचान
सिखा देता है जीना झूठी
बैसाखियों के बिना।

स्वार्थी

हमेशा तुम्हारी स्वार्थी
नज़रों ने ढूंढा अपना लक्ष्य
भेज दिया मुझे चंद सिक्के
कमाने घर से बाहर,
कितनी ही नज़रों के
ढंक, कितनी फटकार,
सह-सहकर कमाया व
बहाया तुम्हारे सपने पूरे
करने हेतू।
गर्व से सीना फुलाकर
सिर उठाकर, कह देते हो
मेरा परिवार, मेरी खुशी
पर तुम्हें कदापि नज़र
नहीं आई इसके पीछे छिपी
किसी के आँसुओं की सीलन,
उनींदी आँखें, भटकता मन
चाहकर भी कभी
तुम देखना नहीं चाहते थे
क्योंकि तुम मर्द हो, सिर्फ
अहंकार से भरे मर्द।

दौड़

मैं भाग रही हूँ
अपने आप से
दूर बहुत दूर,
कोई सवाल पूछना नहीं चाहती,
क्योंकि मेरे सवाल का जवाब
कभी नहीं मिलेगा।
इक पतंग सी विचरती नभ में,
देख रही सभी रिश्तों की डोरियाँ
महसूस हो रहा कि पकड़ ढीली
पड़ गई मेरी पतंग की डोर की
क्योंकि वो ही काटना चाहता
मेरी पतंग जिसने आसमान
में चढ़ाई थी।
अब मैं भाग भी न पाऊँगी
सिर्फ कट जाऊँगी,
सिर्फ कट जाऊँगी।

सीमा

हर बात, हालात को सहने की
एक सीमा होती है,
फायदा उठाना बन गया
तुम्हारा स्वभाव,
कितनी क्रूरता, वेदना देते
हो जानबूझ कर
बड़े संतुष्ट नज़र आते हो
एक स्त्री पर हावी होकर,
पर शायद तुम नहीं जानते
कि तुम कितने खोखले हो
गए हो,
प्यार का उमड़ता सागर, रेगिस्तान
बन चुका है,
अब न जाने कब इस रेगिस्तान
में दफ़न हो जाएँ मेरी भावनाएँ
मैं और मेरा भविष्य
चूंकि अब मुझसे और
बर्दाश्त नहीं होता,
लक्ष्य भी कोई नहीं रह गया
इस ज़िन्दगी का।

नाव

इक नाव का खवैया बन बैठी मैं,
कितनी मूर्ख, न नाव मेरी, न सवार,
खुशी-खुशी रात-दिन खेती रही
खेती रही।
सफ़र लम्बा रहा
सवार उतर गये,
अपनी-अपनी मंजिल पाकर
रह गई अकेली मैं और मेरी नाव
नदी का पानी सूख गया
शायद नाव आ लगी किनारे पर
इन्तज़ार करती मैं उन्हीं सवारियों का
दिन, महीने, बरस दर बरस
पर क्या कभी लौट कर सवारियाँ
भी आईं,
नहीं बदलता है वक्त, इन्सान, सोच
तभी चलती है ज़िन्दगी।

विडम्बना

तुम्हारे घर कदम रखते ही,
ज़िम्मेदारियों का बोझ,
सुबह से रात कब हो जाती
पता ही न चला,
कभी बच्चों की किलकारियाँ,
कभी उनका रूठना-मनाना,
घर में दोस्तों संग धमाल मचाना,
याद है मुझे।
करके नन्हीं-नन्हीं शरारतें,
छिप जाना, फिर मुस्कुरा कर
सिर्फ यही कहना माँ, पापा से
मत बताना, याद है मुझे।
दिन, हफ्तों में,
हफ्ते महीनों में,
महीने वर्षों में बदल गये
वो नन्हीं मुस्कुराहटें, हँसी
में, और हँसी परायेपन में
बदल गई
पता न चला,
तरस जाता दिन कि दो बातें करूँ,
दो पल बिठाऊँ उन्हें अपने पास,
पर आज वो मेरी जगह ले चुके,
वक्त का मोहरा बदल चुका
तब मेरे पास वक्त न था,
आज वो व्यस्त हैं
विडम्बना, शायद इक मज़बूत डोर
स्नेह, विश्वास और प्यार की
जोड़े है मुझे उन संग।

वो पल

आज बहुत खुश हूँ मैं,
महसूस की है
तेरी आवाज़ में वो खुशी की कंपन,
जो तेरे पैदा होने पर
तेरे बाप ने की थी।
चाहती थी मेरे सामने,
तू भी महसूस करे
कि क्या होता है माँ-बाप बनना,
किस तरह तड़पते हैं
औलाद की खुशी पाने को
मेरा ज़िन्दगी का यही अनमोल
क्षण है आज,
जब तूने सुनी है
यह प्यारी नन्हें की
किलकारी।

संस्कार

नन्हीं कली से
कब तू बड़ी हो गई
चल दी शाला, फिर
ससुराल, आज छोड़
मेरा आँगन, जा रही
तू बनने किसी और के
घर की तुलसी,
तो सौंपती हूँ तुझे
सबसे छिपकर इक नन्हीं सी पोटली
सिर्फ संस्कारों से भरी,
कभी भी तुझे
ज़रूरत पड़े, शान्त मन से
खोल लेना, ये तुम्हें देंगी
हर समस्या का हल,
संभाल कर रखना,
चूंकि, जोड़ी है इसमें
मैंने रकम तिल-तिल
करके, सिर्फ दो शब्द
सुनने हेतू,
वाह, क्या माँ रही होगी
इस बेटी की।

मूक स्तर

शून्य में ताकते,
मूक से कुछ स्वर,
वो ही समझ सकते,
जिन्हें कभी दावा था
इस बात का,
कि वो हमें अपनी
जान मानते हैं।
लेकिन आज वक्त
बदल गया
चल दिये वो, बिन
निहारे, बिन छुए
मेरे शब्द भीग गये,
दौड़ पड़े सिसकियों के बीच
ढूंढने उस शख्स को
जिसने इतना बदला था मुझे
और आज खुद बदल गया।

वक्त के परिंदे

वक्त चल रहा
या वक्त खड़ा
कोई नहीं जानता
लेकिन इतना
महसूस कर सकती,
वक्त लिये दोनों हाथों
में कुछ परिंदे,
दिखा रहा हमें उनके पर,
तेवर और उड़ान
देता हम सबको बारी-बारी
दिखाता उसकी चाल
पकड़ कर रख ले, या उड़ने दे
छोड़ जाता हमारे हाल।
दिखता उन परिंदो संग
उड़ान भरता हर इक शख्स
खड़ा हुआ वक्त बनाता

वो

बरसों बाद मेरे घर की
दहलीज़ पर दस्तक,
किवाड़ खोला,
हतप्रभ, इक बुत बनी,
वो, वो, वो, बरसों बाद,
मैं मुड़ी, वो भी अन्दर
चला आया, मेरे पीछे,
चुपचाप, हलके कदमों से,
इक बच्चे की तरह,
हाथ बाँधे बैठ गई
सामने वाली कुर्सी पर,
थरथरा रही थी देह,
काँप रहा था स्वर,
पूछा, ''कैसे हो?''
''वैसा ही''
बरसों तुम्हें तलाशा। आज पता
चला तो आ गया मिलने।
''तुम-तुम कैसी हो?''
''वैसी ही''
इक ठहरे से पल की तरह,
बैठे रहे हम दोनों,
निहारते इक-दूजे को,
वो अनायास खड़ा हुआ
बढ़ा दरवाज़े की ओर
कि मैंने न जाने कब
उसका हाथ थाम लिया
बढ़कर लगाया उसने सीने से,
वो दो क्षण, आसमान रो पड़ा,
रूह काँप गई, मैं पूरी भीग गई
महसूस कर सकती थी,
उसका मूक रूदन,
धड़कता दिल और वो चाहत
जो बरसों से दबी थी।
अतृप्त पिपासा छोड़कर,
वो चला गया,
दूर अति दूर, जहाँ से कभी
आवाज़ नहीं आती
कदमों के निशान नहीं दिखते।

पल

भूल जाना चाहती
वो कड़वे पल
जो तुमने मुझे दिये
पर नहीं भूला पाती
रिस जाते मेरे घाव
देते मुझे अथाह पीड़ा,
तड़प उठती मैं,
बैठ जाती आधी रात में भी,
करवटें गवाह बनती,
बिस्तर पर पड़ी शिकनों की,
गर कोई पूछे, आँखें भारी
क्यों हैं, लाल क्यों हैं,
सवाल अब तुमसे नहीं
सिर्फ उस खुदा से है
कब तक आखिर कब तक
लेगा वो ऐसे इम्तिहान
और रखेगा खड़ा मुझे
इस आग के दरिया में।

संस्कृति

घर की दहलीज़ से शुरु
होकर, घर का कोना-कोना
ढूंढती,
निहारती छत, आसमान, धूप
व छाँव,
छोटे-बड़े व बुजुर्गों के
काँपते पाँव,
कुछ दुआएँ, कुछ कर्म,
भले-बुरे,
कहीं रूदन, तो कहीं
खिलखिलाहट,
चली जाती फिर उन बेड़ियों
की सीमाओं में,
वहीं जकड़ कर, मरना पसंद
करती, पर लौटती नहीं,
पुकारती नहीं,
रख लेती हृदय में समा
समस्त संसार

माँ

चुपचाप सब ग़म
सीने में छिपाये,
अपनी समस्त इच्छाओं
को दबाए
सुशील, घर का कोना-कोना
निहारती,
उसकी जरूरत कहाँ,
ये बांचती
सोचती किस तरह
मुस्कान देखूं हर चेहरे पर,
भर पेट सो जाये
समस्त परिवार,
कभी 'न' न कहे किसी को,
भले सो जाये, दो कौर
खाये बिन सालन के।
ममता, त्याग का पिटारा
मन में दबाये
सैदव तत्पर, परहित के लिये
यही माँ है।

ज़िन्दगी

मेरे करमों के उतार-चढ़ाव,
कभी भीषण गरमी कभी सरदी,
गरजते बादल, पड़ते ओले,
दिल रोता, आँखें हंसती,
देकर धोखा निकल जाते
अश्रु भी,
मुझे शब्द ही नहीं मिल पाते,
जब कोई कहता, ''कैसे हो?''
मिलते हैं कुछ सहारे
कभी-कभी
कुछ लोग जो अपने न
होकर भी अपने हैं
समझते हैं मेरी उम्र की पीड़ा,
कह जाते हैं चंद शब्द
उपहास या सांत्वना के
पर मैं सदैव रखना
चाहती अपनी ज़िन्दगी
बंद मुट्ठी सी,
रहस्यमयी।

झोंपड़ी

विशालकाय बंगला,
वो तुच्छ सी झोंपड़ी,
मैं चैराहे पर खड़ी
निहार रही उन दोनों के तेवर,
सुनसान, सांए-सांए हवा
बंगले को छूती निकली
तो देखा, झोंपड़ी खिलखिला
रही थी।
पूछ ही बैठी मैं अरे इतनी
खुश क्यों नज़र आ रही?
बोली, देखो, कहीं-कहीं
टिमटिमाती बत्तियाँ,
कभी-जगती कभी बुझती बत्तियाँ,
अलग-अलग डरबों में रहते लोग,
अपनी-अपनी खुशी ग़म सहते लोग,
कभी तो इस दीवार की खबर
उस दीवार को भी न होती।
देर रात से घर आए लोग,
पीछे के दरवाजे से घुस जाते
बंद हो जाते अपने कमरों में, बिन
जलाए इक माचिस की तीली,
खाते, कभी न खाते
निहारता ही रहता रामू काका
सबके तेवर
खेल लुक्का-छिप्पी का देखता
ये बड़ा दरवाज़ा व बंद हो जाता
रामू काका के सोने पर।
सुनते हो, ऐसा कुछ भी नहीं
मेरी इस झोंपड़ी में,
सब सांझा है सब खुला है
चाहे ग़म या ठहाके।
सुनकर उसकी बात सोच
में पड़ गई
कितनी अमीर, समृद्ध है ये झोंपड़ी।

स्वपन

गोद में नन्हें को लिये,
मुस्करा रही थी,
खुद ही खुद बतिया
रही थी,
मेरा राजा बेटा, मेरा
राजकुमार
मेरी आँखों का तारा
मेरा राजदुलारा,
कब बड़ा होगा?
मम्मा के लिये लाएगा
इक सुन्दर सी दुलहन
घूमेगी, खाना पकाएगी,
पाँव दबाएगी,
कटेगा बुढ़ापा उस नन्हीं
सी जान की आस पर!
नहीं करेगी अलग वह
पल भर भी, इस नन्हीं जान को,
बड़ा होगा तो क्या?
उसके लिये तो 'नन्हा' ही रहेगा।
पास बैठी बेटी सुन रही सब
कि भोली भाषा में बोल बैठी
''माँ, ऐसा कुछ नहीं होगा,
तूने दादा-दादी को घर से
निकाला है,
ज़मीन पर सुलाया है,
कभी सेवा नहीं की,
पापा को उनसे बतियाने
भी नहीं दिया,
मुझे भी उनके पास
जाने नहीं दिया।''
सुनकर स्तब्ध, हैरान व बेचैन
सोच अपना वही कंटीला भविष्य
जो उसने बो दिया था।

दोराहा

दौराहे पर खड़ी जिन्दगी,
लिए कई सवाल,
कई बवाल
चहुँ ओर घोर अन्धकार,
टिमटिमाता सा इक तारा,
ममता का सहारा,
क्यूँ बार-बार मेरा हाथ
पकड़, मुझे घसीट लाता
ये उस दौराहे पर
जहाँ से आगे जाना
कठिन,
पीछे आना असंभव,
खींचता तुम्हारी ओर
सिर्फ एक ही जवाब,
कि ज़िन्दगी के बचे पल
तुम्हारे नाम हो जाएँ
लगे मुझे कि किसी काम
आए मेरे ये निश्छल पल
बूढ़ी ज़िन्दगी।

ये भ्रमित जीवन
किसी भी तरह
जीने नहीं देता
पूछती हूँ इक सवाल
खुद से,
क्यूँ खींचते हैं
कुछ रिश्ते,
जिनसे हम दूर भागते हैं
स्पर्श, उसका पाकर
मदमस्त हो जाते हैं
भूल जाते कि ये भ्रम है
सालों ने एक लम्बी कतार
खींच दी है,
फिर भी बहलाते हैं मन
क्योंकि ये रिश्ते खून के हैं।

बेटी

देख रही थी मैं,
उसे काम करते,
आज ससुराल में पहली बार,
भाग-भाग कर, पूरी करते
सबकी माँग, रख इक
मुस्कान अपने मासूम से
चेहरे पर।
उसका सजा छोटा सा कमरा,
व पड़े छोटे-छोटे शो-पीस,
याद आ गया मुझे भी अपनी
ससुराल का वह समय
जब मैं बन दुलहन आई वहाँ,
उसका सब संग 'जी' कहकर
बतियाना व मेरे संग लिपटकर
आज भी ज़िद्द करना,
भर गया मेरी आँखें
देर रात तक, काम कर
बताने लगी, वह अपनी चीज़ें
''माँ, ये मैंने शगुन के पैसों
से खरीदी, माँ को उनके
जन्मदिन पर दूँगी''
खुश हो जायेंगी।
दिखाई उसने अपने ससुरजी
के लिये ली वह चाँदी की ऐशट्रे
व नरम ऊन की कंबली,
जो देना चाहती थी उन्हें उनके
'विवाह दिन' पर।

हर आवाज़ पर कोशिश कि
दिखे, हर चेहरे पर मुस्कान,
वह उठ-उठकर सबको देखती
सहेजती, ठीक उसी तरह, जैसे
कभी उसने देखा था अपने
दादा-दादी को हमारे साथ।
खुशी हुई ये सब देखकर,
लगा, बसती है हर माँ
अपनी बेटी के अन्दर,
दिखती है वह वक्त आने पर।

स्नेह

आहट दी दिवाली ने,
सेठ की आवाज़ ढीली पड़ी,
बोला ठेकेदार से,
दिवाली से 10 दिन पहले
तैयार हो बंगला
आदेश ले ठेकेदार,
लगा मज़दूरों को रिझाने,
करने लगा माँग, शाम को
देर तक काम की,
कुछ मान गये, कुछ अड़ गये
ले देकर बात सिर चढ़ी
कि झबुआ भी आने को
तैयार हुआ।
उसके सामने दीपक, खिलौने
नई पोशाकें आने लगी
घर जाते सुनाया उसने
देर तक काम करने का फरमान
कि नन्हीं बेटी समझ गई,
नन्ही-नन्ही अंगुलियों से न-न
कर अपने बापू को रोकने लगी
झबुआ रुका नहीं, वह साथ
लिवा ले गया उसे
काम चालू था, देख तालियाँ
बजाने लगी नन्हीं,
झबुआ तसले में माल भर
पहुँचा रहा था सामने वाले घर पर,
वह तसला भरता और बिठा लेता
नन्हीं को कंधे पर,
जब खाली कर वापस आता
तो बिठाता तसले में,
खुशी के मारे नन्हीं चीखती
हँसती और नाचती।
झबुआ भी उसे उतारता, दूसरा
भरता व चल पड़ता।
देखकर उसका ये स्नेह
भर आईं मेरी आँखें
करोड़ों उन बच्चों से
भाग्यवान है नन्हीं, जो
सुबह क्रैच जाकर सोए हुए
कार की पिछली सीट पर
आते व सो जाते घर आते ही

याद मेरे गाँव की

सिमटी सी ज़िन्दगी,
मुँह पर ताला,
बंधे हाथ, कुछ ढूंढती नज़रें,
अचानक याद दिलाती मुझे,
बीती इक सुन्दर सी
ज़िन्दगी मेरे गाँव, मेरे घर में,
जहाँ मन्दिर की घंटियाँ,
मुझे उठाती,
सूरज की किरणें सब
याद दिलाती,
पड़ोस की चाची की नन्हीं सी बेटी
सप्ताह में 2-3 बार
लस्सी का लोटा लिया
दरवाजे पर दस्तक देती,
सत्तो ताई भी किसी पुराने
कपड़े के टुकड़े में बाँध
दो रोटी, साग छिपा कर लाती,
आवाज़ देती, कंपकंपे स्वर में,
राणों, सुबह-सुबह बनाया है
खा ले बेटी, फिर ससुराल चली
जायेगी, कौन पूछेगा?
आते दरवाज़े पर फेरीवाले
कभी सूट, कभी चादरें तो कभी
चाट-कचैरी,
गुहार कर-करके टिका ही जाते
कुछ न कुछ, ये कहकर माँ को,
कि बेटी आई है, ले लो।
बड़ा मज़ा आता, जब पैसे कम
करा-करा के हम चीज़ें खरीदते
और लहर-लहर कर कपड़े लपेटते,
कौन सा अच्छा लग रहा?
आज विशालकाय भवन,
दाम लिखी पर्चियाँ,
पढ़कर मत मसोस लेते,
पर कोई गुहार न करता लेने को,
चुपचाप लौट आते
खाली हाथ लटकाये,
याद करते वही गाँव की ज़िन्दगी,
जिसमें बाँटते थे गम-खुशियाँ
खेलते थे कबड्डी, स्टापू,
पर हँसते थे खिलखिलाकर
बजाते थे तालियाँ।

सोच

गाड़ी बाहर खड़ी कर,
बेटा अन्दर आया,
बोला, ''माँ का सामान,
बैग कुछ दवा की डिब्बियाँ,
दो चादर, तकिया, कंबल
गाड़ी में रखवा दो।''
बहू ने आज तनिक भी
देर न की,
मुस्कुरा-मुस्कुरा कर
'जी'-'जी' करते सारा
समान रख दिया डिक्की में।
पास के कमरे में सुनती माँ,
खुशी के हिलोरे लेने लगी,
आज कहीं बेटा घुमा कर लायेगा;
बदल जायेगी, उसकी भी हवा-पानी,
मिलेगी चार लोगों से
देखेगी, कमरे की बाहर दुनिया।
''जल्दी चलो माँ'' आवाज़ सुन
काँपते हाथों में भी जान आ गई।
जल्दी-जल्दी साड़ी बदल,
मुस्कुराती, अपने पोता-पोती
को निहारती वह दरवाज़े
के बाहर तक आ गई,
पकड़ा बेटे ने हाथ व
माँ को बिठाया पिछली सीट पर।
गाड़ी चलाते, कनखियों से देखते
बोला, ''माँ, घर छोटा पड़ गया है,
राजू को पढ़ने को कमरा चाहिये,
रेणू भी सारा दिन थक जाती है
सोचा, ''अपना जीवन जी ही नहीं
पाती, सारा दिन बंधन-बंधन-बंधन
सो आपके लिये.....''
कहते-कहते विशालकाय भवन
तक आ पहुँचा।
उतारा माँ को, टाँगा कंधे पर बैग,
उठाया सामान दोनों हाथों में,
व चल दिया अन्दर की ओर
जहाँ दे आया था ''डोनेशन''
दोपहर में, इस वृद्धा से निज़ात
पाने हेतू।
एक सुन्दर सी लड़की के हाथों
सौंप, फोन नं. नोट करा,
पैर छूकर व ये कहकर
''कभी-कभी आ जाऊँगा माँ,
ज़रूरत हो किसी चीज़ की
तो इन्हें बता देना''
टुकर-टुकर देखती रह गई वह निश्चल
देह, देखकर अरमानों का बिकना
बेटे का जाना.....।

वो दिन

याद आ जाता है मुझे
वो पल,
जिस दिन बन दुलहन
आई मैं तुम्हारे द्वारे,
दिन बीत, बदल गये
बरसों में,
बरस दे गये मुझे
संसार की तमाम खुशियाँ,
दो नन्हें फूल व
घर सी सुन्दर बगिया।
ये किसका सिर्फ तुम्हारा,
तुम्हारा हाथ थाम कर,
चल पाई मैं,
कभी संकरीली, कभी
पथरीली राहों पर।
अब दुआ है ख़ुदा से,
दूर कहीं दूर तक देखें हम,
उगता-छिपता सूरज
वह महके हमारी ये
बगिया रहती दुनिया तक।

मेरे शब्द

मेरे कुछ शब्द गले में
रुंध गये,
कुछ आँखों से बह गये
आखिर क्यूँ?
पूछने लगे वो
जवाब नहीं था मेरे पास
मैं फिर सी, हाथ बांधे खड़ी थी
शब्द हाथों में चुभ गये,
चाहा निकल जाना वहां से
वो शब्द पाँव के छाले बन गये
मेरे शब्द (आधीन) दास बन
चुके थे दूसरों की पसंद के
इसलिये अब वो वाणी खो चुके थे
सिर्फ सिसकते थे।
सांत्वना दी है उन्हें कि
कभी कोई, जब उन्हें समझेगा,
तो उनका अधिकार उन्हें मिलेगा
शायद की कड़ी पर खड़े
शब्द मुझे निहार रहे,
सांत्वना कि उन्हें अधिकार
मिलेगा।

चैराहा

ज़िन्दगी के चैराहे पर खड़ी,
ताकती निगाहें,
सब रास्ते संकरे,
जाऊँ, तो कहाँ जाऊँ,
ये चैराहा और मैं,
घूमती, चहुँ ओर,
कभी पार किये थे
ये लम्बे रास्ते
आज समझ नहीं आता
कोई लौ दिख नहीं पाती
महसूस करती
इक लम्बी सुरंग,
जिसका किनारा
इस चैराहे पर, किसी
भी रास्ते में नहीं
खुलता।

रोटी

कभी इन्हीं हाथों ने बनाई
अनगिनत रोटियाँ,
काटी थी कई उनींदी रातें,
भिगोया था मेरा बिस्तर,
रही चिन्ता पल-पल सबकी,
आज, जब इक निगाह उठी,
लगा शायद बरसेगा वो पुराना
दिया-लिया, नहीं, मैं गलत थी,
सबका अपना-अपना संसार,
कोई गरम हवा खिड़की से
आने नहीं देता
अरे, दरवाज़े तो क्या रोशनदान
भी बन्द हैं,
ये सच है इक औरत बना सकती है
हजारों रोटियाँ, पर बनवा
नहीं सकती, इक रोटी,
सिर्फ इक रोटी,
क्योंकि वो बहुत महंगी व भारी
हो जाती है।

वो दूर के रिश्ते

ये रिश्ते,
कुछ हँसते, कुछ रोते,
कुछ रिसते कुछ खिझते,
पर कहलाते हैं ये रिश्ते
रिश्ते खून के, कुछ पानी के
अन्दर तक तड़पाते, भींद ही जाते मन, मर्यादा
रुंधे कंठ से, भरी आँख से
कब निभ जाते,
कब छिप जाते ये नए-पुराने
अपने पराये
दूर-पास और घृणा-प्यार
के, उतार-चढ़ाव के कंटीले
से, कभी मखमली से ये रिश्ते।
रंग-बिरंगे, ठंडे-गरम, कड़वे-मीठे
सबक सिखाते, अपने खून के
अपने रिश्ते,
भरी ठंड में, भरी आँख में,
भर बाहों में, गले लगाकर
गर्माहट दे, पोंछ आँख को,
हंसी मुख पर ले आते
ये दूर के रिश्ते।
कितनी गलत हो जाती दुनिया
इन्हें पराया कह जाती है, नहीं-नहीं
ये ही तो अपने, सिर्फ दूर के
कहलाने वाले, अपने रिश्ते।

ऊँचाइयाँ

ज़िन्दगी की ऊँचाइयों को छूते कुछ इन्सान,
क्यूँ नहीं देख सकते,
वो मुकाम जहाँ से शुरु हुई थी
उनकी ऊँचाइयाँ,
धीरे-धीरे बढ़ते कदम,
क्यूँ नहीं देख पाते किसी की मज़बूरियाँ,
खिल्ली उड़ाते, मुस्कराहटें बिखेरती
देख तड़प किसी की,
भूल जाते कि बद-दुआओं से
सरकती है पाँव तले की ज़मीन
व धंस जाती हैं वे ऊँचाइयाँ
धरती की गर्भ में,
जहाँ से कभी कोई वापस नहीं आता,
सिर्फ रह जाती हैं कहानियाँ।

तुम क्या हो?

तुम धरती की शान हो,
तुम हम सबका मान हो,
तुम बहनों की आन हो,
तुम हम सबका गान हो,

देश का अरमान हो,
भारत माँ की जान हो,
तुम नींद हो, तुम चैन हो,
तुम ख्वाब हो, तुम रैन हो

तुम देश हो, तुम सरहद हो,
तुम साँस हो, तुम आस हो,
बसे देश के कण-कण में,
तुम हम सबका अहसास हो

तुम वीर हो, तुम धीर हो,
तुम ज्वाला, तुम नीर हो,
तुम बादलों की गड़गड़ाहट,
दुश्मनों की फड़फड़ाहट

तुम शेर की दहाड़ हो,
तुम देश का पहाड़ हो,
तुम हम सबकी जान हो,
सब माँओं का अभिमान हो

तुम सूरज, तुम चाँद हो,
तुम धूप, तुम छाँव हो,
तुम सम्राट जल के,
तुम परिन्दा आसमान हो

काँपती है धरा, आसमान रोता है,
जब भारत का सपूत शहीद होता है,
विश्वास करो, सम्पूर्ण भारत है ही नहीं,
विश्व नतमस्तक सदैव तुम्हारा ऋणी है,
क्योंकि तुम बिन हम कुछ भी नहीं,
हम कुछ भी नहीं, हम कुछ भी नहीं।

आज के खेल

आज मैं गुजरी उस सड़क से
कराहती सी आवाज़ थी आई
मैदान वो रोया, पीपल चीखा
"बोलो मेरे बच्चे कहाँ है भाई?"
इक्के-दुक्के बच्चे बैठे हाथों में
मोबाइल था भाई,
मैदानों की सारी खुशियाँ इस
डिबिया ने बेचकर खाई।
घास उग आई, कूड़ा भर गया
कहाँ रह गई अब वो माँ जाई
जो कहती थी अपने लल्ला को
पल भर जा क्यूं न हवा मैदान की खाई?
खड़ी रही मैं मूक सी मूर्त
देती क्या मैं उसे जवाब
पूछते हैं जब मेरे ही बच्चे
खेल मैदान के, उनका ख्वाब
टी.वी., मोबाइल आज के खेल
रुक गई भईया बच्चों की रेल।

ससुराल से प्रताड़ित

दरवाज़े पर खड़ी लड़की
ससुराल से प्रताड़ित,
मन से बेचैन,
शरीर से शिथिल,
काम की मारी,
घर से निकाली गई,
इक मद्दम सी आस,
दिल में दबाए,
भारी कदमों से मायके
के दरवाजे पर खड़ी
इन्तज़ार करती
उसे अन्दर बुलाए जाने का
देखकर भाँप लिए गए हालात,
शुरु हो गई सबकी दलीलें
भाई, भाभी के डर से,
माँ, पिता के डर से,
कोने में खड़ी ताकती रही,
गूंगी, बहरी व मूक सी,
याद आया उसे वो ज़माना,
जब वो आई थी ब्याही
इस चैखट में,
परीक्षा की घड़ियाँ समाप्त
होने का नाम ही न ले रही थी,
हर नज़र वक्त ये ही चीखता,
"देखते हैं कैसे कर पाएगी?"
चुपचाप अंधेरे मुँह उठना,
देर को सोना, हर किसी
की ज़रूरतों को पूरा करना
फिर भी यही सुनना, "चार
रोटी खायेगी, तो कुछ काम तो करे।"
अविरल आँसू बहे हैं उसके।
धीरे-धीरे, विश्वास की चाल,
माँ ने बेटी का हाथ पकड़ा,
अन्दर लाई, बिठाया और कुछ समझाया
भारत की नारी जब लाँघती चैखट
तो नहीं आती लौटकर कभी,
उसे बनानी है अपनी वह दहलीज़,
चली गई वापस बटोर कर आँसू,
लेकर हिदायतें वह अपने घर,
देखते रह गये भाई, बापू व
उस मकान की दिवारें।

वो खेल का मैदान

खेलते थे हम कभी,
कबड्डी, फुटबाल,
लम्बी दौड़ व लंगड़ी टाँग,
बैठते थे घंटो, बतियाते
थे सब बातें,
कभी लड़ पड़ते, तो कभी
सुलझे से मुस्कुराते।
होते ही शाम, निकल पड़ते, सब
एक-दूसरे को बुला-बुलाकर,
पहुँच जाते इस मैदान में
व देखते कौन नहीं आया,
भेजते छुटकू को उसे घर से बुलाने
ग़र बीमार होता तो पूछने जाते,
वरन् पकड़ ले ही आते।
सारा मैदान खुशी के मारे,
ठहाके भरता, गिर जाता कोई
तो उसे मरहम भी करता
हो जाता अंधेरा, पर खत्म
न होता खेल, बनाते रहते
चलाते रहते वो नन्हें अपनी रेल।
घर से कई संदेशे आते
अंधेरा घिर आया, घर वापस आओ
"बस 2 मिनट और, अभी आता हूँ।"
कह लौटा देते, भईया वापस जाओ।

मैं क्या हूँ?

ज़िन्दगी के आखिरी पड़ाव में,
नज़र आईं, ज़िन्दगी की संकरी
गलियाँ, पथरीले रास्ते,
भीगी छत और गरम लू से
कई हादसे।
क्यूँ आखिर क्यूँ, सबकी उम्मीदें
टिक जातीं इक औरत पर,
चाहते, वह वही करे, जो वो चाहें,
बोले सिर्फ वो शब्द, जो उन्हें भाएं,
पहने वो कपड़े, खाये वो खाना,
जाए उस जगह, सोचे वो सोच,
जो सदैव उनके हक में हो,
नहीं उसका हँसना-रोना-सोना
भी प्रतिबंधित है, कुछ भी तो
अपना नहीं, टटोलती हूँ खुद को,
अनगिनत सवाल खड़े हो जाते
मेरे सामने लगता इस जन्म में
तो खुद से मुलाकात न होगी
क्योंकि मैं एक औरत हूँ
फिर भी कभी वक्त मिला
तो बताऊँगी, सोचूँगी कि
"मैं क्या हूँ?"

माँ का घर

दूर अति दूर से
आई बेटी,
घर के आँगन में आते ही,
बन जाती नन्हीं चिड़िया।
माँ आज भी पुकारती उसे,
उसी नाम से, जो सहेजा था
उसके पैदा होने से पहले।
पुकार माँ की
ले आती अपने संग
अनगिनत यादें,
जिन्हें रखा है उसने
संभालकर दिल के तहखाने में,
भाई का उसका नाम बिगाड़कर
बुलाना,
मुहल्ले वालों का उस नाम
को छोटा करना
और बापू का साथ में
'बेटा' लगाकर बुलाना।
कितनी चिढ़ जाती थी
जब पता चला था
काॅलेज में दोस्तों को
उसका वो नाम।
क्यूँ तड़पी है आज
जब पुकारा माँ ने
ले उसका वो बचपन
का नाम,
क्यूँ सुनना चाहती है
बार-बार वो
बचपन का उसका वो नाम।

ये धरती

ये धरती है रहीम की, ये धरती है राम की,
ये धरती रहमान की, ये धरती हिन्दोस्तान की
मानवता की सम्मान की, शहीदों के बलिदान की,
शेख सिंह अनजान की, शांति के फरमान की,
समझ सको तो समझ लो,
क्या जरूरत है कोहराम की,
जब बंटता नहीं है आसमान,
क्यों बांटे धरती इन्सान की
माँ-माँ होती है सिर्फ माँ
भले बेटा हिन्दू, मुस्लिम या सिख-इसाई,
साधू-संत हो या कसाई
कभी लीक न तुम लांघो मर्यादा की,
कि शर्मिन्दा हो ये ''भारत माँ'' जग जाई।

रंग जिन्दगी के

कितने रंग जिन्दगी के देखे मैंने,
कुछ माँ की गोद में,
कुछ पापा की बांहों में,
दिखाये दोस्तों को भी,
अपने-अपने रंग वक्त
आने पर, वक्त पड़ने पर
सब सहन हो गये, चूंकि
वक्त की रफ्तार ने उन्हें
कभी मिटा दिया कभी
धूमिल किया।
पर चढ़ गये रंग दिल के
दिल पर
जो उतारे भी उतरे नहीं
पायेंगे, उनके निशान कभी
मिट नही पायेंगे
जो रंगे मुझ संग कुछ
अपनों ने दिए, जो जानते थे
कि मेरी ज़िन्दगी की चुनर
कब और कैसे रंगनी है।

नन्हा

खुश होकर इक गीत बनाया,
उसने सबको मन हर्षाया,
पहन के जूते, लगा के चश्मा
वो दादा-दादी को लेने आया
उलटी-सुलटी बातें बोले
प्यार के वो हर राज़ खोले
देख के गाड़ी, बजाये ताली
खुशी है मन में इक मतवाली
दादा-दादी उतरे गाड़ी से
नन्हा देख उन्हें है भाया
लेकर गोद में खूब दुलारा
उनका नन्हा सबसे प्यारा
नन्हें ने है गीत सुनाया
सबकी आँखों को छलकाया,
मटका-मटका कर हाथ वो उसने
जोर-जोर से गीत ये गाया
रेल आई - रेल आई
मेरे दादा-दादी को लेकर आई
नन्हा बेटा सबको भाया।

ज़िन्दगी

जो ज़िन्दगी जी नहीं
वही जीना चाहती हूँ
चाहती हूँ देर से उठना,
जल्दी सोना,
आइसक्रीम और गरम खाना खाना
और कभी-कभी पिक्चर देखना
और तुम्हारे पापा के संग
किसी बाग के कोने में
बैंच पर बैठना।
जब जी चाहे घर जाना,
और किसी भी काम के
लिए कोई चिन्ता ना होना।
कोई कभी सुबह हमें भी
कहे, उठो चाय तैयार है
नहा लो, नाश्ता भी लगा है।
जो भी ज़िन्दगी भर जिया, किया
उसका ब्याज खाने को जी चाहता है
सुने छोटे लोरियाँ
ले बड़े सलाह,
आकर बैठें चन्द लम्हे
हमारे संग।
ले लें वो खजाने जो संभाल कर
रखे हैं
सब सामने ही संभाल लें
जी चाहता है।

मज़बूरी

फड़फड़ाते हैं वक्त
के परिंदे,
जी चाहता है, दूर-अति दूर,
आकाश में दौड़ लगाऊँ,
देखूँ ये धरती,
समुद्र, व उसका रचा संसार,
क्यूँ बाँध रखा है
खुद को मैंने,
इक कमरे की चारदिवारी में,
रोकता भी कोई नहीं,
परन्तु इक मजबूरी,
तेरी मासूम सी सूरत,
रोकती है मुझे,
बंधी हूँ तुझसे,
किन धागों से
दिखते भी नहीं
टूटते भी नहीं
पर नहीं जाने देते मुझे
तुझसे दूर।

वो वृद्ध

कितने सिमट से गये हम,
पड़ोसी को पड़ोसी की खबर नहीं,
गाँव तो बहुत दूर रहा।
बता रहा था किशन चैपाल में,
आए थे कुछ लोग बैंक से,
उसे सिखाने "नैट बैंकिंग"
साफ मना कर दिया उसने,
चलाता है वो कम्प्युटर
करता है ढेरों बातें दोस्तों से,
पर सोचता कि ग़र सब
काम हो जाएंगे मोबाईल से,
तो कैसे निकलेगा, वो घर
से बाहर? कौन पहचानेगा उसे?
मंगा लेगा कपड़े, जूते, बर्तन
घर पर,
तो कैसे देखेगा रौनक बाज़ार,
पढ़ा लेगा सब पाठ नन्हों को
घर पर ही
तो कैसे जायेंगे शाला व
सीखेंगे संस्कार
दे देते आज हम बधाई फोन पर ही,
फिर कौन मिलायेगा हाथ,
मिलेगा गले, देगा आशीशें
छुएगा पाँव।

रहती है सत्तो ताई अकेली
देखने जाना है उसे भी
बीमार है सरपंच साहब,
पूछने जाना है उन्हें भी,
दो घूंट चाय की चुस्की संग
देखनी है मुस्कान इन चेहरों पर,
खानी है मिठाई शादी-सगाई
वाले घरों से,
नहीं करना है उसे एस.एम.एस.
नहीं करनी उसे आॅनलाईन शाॅपिंग,
आॅनलाईन बैंकिंग,
नहीं सिमटना है उसे एक ही कमरे में,
ज़िन्दगी आज है, कल नहीं
जीनी है उसे, सबके दुःख-सुख
हँसी-मज़ाक के साथ।

ख्वाईश

कभी अपना, कभी पराया जहान चाहती हूँ,
आसमान पे अपना नाम लिखना चाहती हूँ,
मिटा के अपनी हस्ती मैं क्या चाहती हूँ,
खुद मुझको भी पता नहीं मैं क्या चाहती हूँ,
कभी लहरों पे चलना, तैरना पहाड़ों पर चाहती हूँ,
समुद्र की गहराइयों में उतरना भी चाहती हूँ,
हर कदम पे उसका मैं साथ चाहती हूँ,
खुद मुझको भी पता नहीं मैं क्या चाहती हूँ,
बन कर परिंदा मैं कभी उड़ना चाहती हूँ,
दिल में उनकी कभी कूंकना चाहती हूँ,
ओढ़कर मैं चादर सोना चाहती हूँ,
खुद मुझको भी पता नहीं, मैं क्यों चाहती हूँ,
हर कल्पना का यथार्थ मैं चाहती हूँ,
दुश्मनों से कभी, दोस्तों से सलाम चाहती हूँ,
गले लग के कुछ पलों के मैं रोना चाहती हूँ,
खुद मुझको भी पता नहीं, मैं क्या चाहती हूँ,
माँ, बहन से हटकर मैं कुछ और चाहती हूँ,
मानवी सैलाब में इक इन्सान चाहती हूँ,
बिन बात सब समझ ले, वो साथ चाहती हूँ,
खुद मुझको भी पता नहीं, मैं क्या चाहती हूँ।

जहान से आगे

बिखरा चहुँ ओर जहाँ प्यार ही प्यार होता,
हर शख्स बीज इन्सानियत जहाँ बोता,
दंगे फसादों का कहीं नामोनिशान न होता,
इस जहान से आगे कोई और जहान होता,

दिल किसी ग़रीब का इक टुकड़े को न रोता,
वो भी शानो शौकत से ज़िन्दगी को जीता,
न ऐटम-बम होता, न खंजर कोई होता,
इस जहान से आगे कोई और जहान होता,

जहाँ सरहदें न होती, न आक्रमण होता,
न हिन्दू कोई होता, न मुसलमान होता,
मनाते मिलकर जश्न, सब ज़िन्दगी के,
इस जहान से आगे कोई और जहान होता,

जहाँ शाम अपनी होती, सहर अपनी होती,
ठहाकों में यारों दुनिया सारी हँसती,
न बेटी कोई होती, न बेटा यहाँ होता,
इस जहान से आगे कोई और जहान होता।

वादा निभाकर देखो

हमको मीत बनाकर देखो
ग़ज़लों में तुम गाकर देखो
अलफ़ाजों में सो जायेंगे
तराना कोई जगाकर देखो,
भूल गये तुम कसमें सारी
वादा इक तो निभाकर देखो,
छोड़ गये जहाँ हमको अकेला
उन राहों पर आकर देखो,
जिस्त सकूँ को बहुत है तरसी,
चेहरा गुलों में छुपाकर देखो,
नज़र मिलाना कठिन है शबनम
चादर मुख से हटाकर देखो
हम तो रंगे थे इश्क में ऐसे
छूकर लपटों को तुम देखो।

रिश्ते

रिश्ते नातों में रखा क्या है,
बेकार की बातों में रखा क्या है,
बंधने को बहुत कुछ है जग में,
रिश्ते बाँधने में रखा क्या है,
बाँट के प्यार, नाम मत दो कोई,
नफ़रत के निशानों में रखा क्या है,
आग बरपा दे जो बात जहाँ में,
ऐसे अफसानों में रखा क्या है,
ग़र पहचान ले इंसा, इंसा को,
फिर खून खराबों में रखा क्या है,
बीज इन्सानियत के बोते चलो तुम,
हैवानियत के दरख्तों में रखा क्या है,
सच्चाई की एक ईंट ही काफ़ी,
झूठ की इमारतों में रखा क्या है,
मंदिर अहिंसा का, बनाओ यारों,
हिंसा के खंजरों में रखा क्या है।

ऐ पाक

आज हम जहाँ हैं खड़े जिस मुकाम पे,
पहुँचे हैं हम यहाँ पे कुरबानियों के बाद,
भारत महान सबको पता, हम कहें तो क्या,
लो माफ़ कर दिया तुम्हें, नादानियों के बाद,
अभी वक्त है संभल जा कहीं देर न हो जाये,
न जाने क्यूँ है बक्शा, तेरी खामियों के बाद,
आज़ादी मिल गई पर आज़ाद तू नहीं,
तू क्यूँ बहाता खून नाकामियों के बाद,
कब्रों पे कब बने हैं महल, जीत कब हुई,
हम चैन से जीयेंगे कुर्बानियों के बाद,
कहीं ऐसा न हो, तेरा, नामों निशां न बचे,
पहले कभी नहीं था, अब हो न इसके बाद।

संभालता चला गया।

वो सीढ़ी दर सीढ़ी उतारता चला गया,
वो ज़िन्दगी से हमको निकालता चला गया,
समझा था जिसको हमने ताज़-ए-ज़िन्दगी,
गैरों को वो हरदम संभालता चला गया,
भिगोए थे जिसकी याद में तकिए कई,
वो अश्कों को अपने संभालता चला गया,
गया वो हमारी बस्ती के बुझा सारे चिराग
चिंगारी को अपनी वो संभालता चला गया,
हिज्र में हम उनकी सो ही गये थे,
टुकड़े कफ़न के वो अब संभालता चला गया।

अहसास की राखी

धूप छाँव के मोतियों
से गूंथी,
भाई इक राखी, तुम्हारी
बलिष्ठ कलाई हेतू
खिलवाड़ कर रहा पल-पल,
अंगुलियों ने थामी
है डोरी,
बाँधी राखी तुम्हारी
अहसास की कलाई पर,
भीगे नयनों ने
सब कुछ बता दिया,
भाई, तुम्हारी वीरता
ने सैलाब थाम लिया,
समेटा है चंद अखबार
के खूनी टुकड़ों को
मुट्ठियों में,
तिरंगे में लिपटे
कई भाईयों को
आँखों की कोठरियों में
समझ राखी
का अनमोल नेग।

भविष्य भारत का

कांधे पर मैला कुचैला
बोरा, धूल सने बाल
पिचकी गालें, डंडा हाथ में
लिये, कूड़े के ढ़ेरों में से
खोजता रोटी, पैनी नज़रें
जंग लगी कील तक
ढूंढ लेती,
नन्हें पगों नप जाती
मीलों ज़मीं दिन भर में,
आज सुबह से,
कील तक नहीं मिली,
कल्लू पहले ले
गया लगता बोरे में
सारी रोटियाँ,
माई पानी पिला दे
कोई रोटी.....
टुकर-टुकर देखती
मेरी नज़र, भारत
का भविष्य, हाथ में
देते बासी रोटी की
सौगात पानी संग।

इक रहम कीजिये

इक करम कीजिये इक रहम कीजिये
अपनी यादों में हमको रकम कीजिये,
जीते जी हम नजर को मिला न सके
वक्त से पहले चिलमन हटा दीजिये,
हम जिगर में जगह को नहीं पा सके
मौत से पहले नज़रें मिला लीजिये,
फ़ासला चाहे जितना भी हो बीच में
मेरी मैयत को कांधा लगा दीजिये,
मौत से भी गिला हम करेंगे नहीं
कब्र पे हाथों मिट्टी चढ़ा दीजिये,
जीते जी पा न पाये गिला अब नहीं
इस नज़र से नज़र को मिला लीजिये,
गुलबदन कह सके तुम नहीं ग़म हमें
मेरा चेहरा गुलों में छुपा दीजिये,
नींद फूलों के बिस्तर पे आती नहीं,
अपने हाथों से चादर ओढ़ा दीजिये।

वो

ज़िन्दगी के हर पहर में,
वो जुझती सी औरत,
कौन?
मुँह अंधेरे उठकर,
काम में लगती,
कभी बच्चों, तो कभी पति को तकती,
हर दम दबी-घुटी,
सबकी फरमाईशें पूरी करती,
फिर भी सवालों के घेरे में घिरी,
एक साथ कई काम निबटाती,
बिंदी माथे से उतर कर
कभी कोहनी पर या गाल पर आ जाती,
बाल संवर नहीं पाते,
पर काम पूरे ही नहीं होते,
बैठकर ठहाके लगाता
आँगन में पूरा परिवार,
लाँघते ही आँगन तिरछी सी
मुस्कान बिखेर जाती,
फिर जुट जाती, इस हिसाब में,
कौन मेहमान आने वाले हैं?
किसको क्या लेना-देना है,
सत्तो ताई बीमार है पूछने जाना है,
पटवारी के घर पोता हुआ, बधाई देनी है,
मशीन से हाथ चला
कोशिश करती पूरे काम,
ये कौन, इक मालकिन, उस बड़े घर की,
जो कहलाती महज़ इक सकुशल,
घरेलू महिला।

वो नन्हा

पहन के बस्ता,
टाँग के बोतल,
स्कूल की चमकीली वर्दी में,
ठुमक-ठुमक कर वो पग भरता,
आया घर से पहली बार,
बहुत समझाया सबने उसको,
जा रहा वो भी शाला आज,
उतर गोद से पहन रहा वो,
ज़िम्मेदारी का है ताज।
जैसे ही स्कूल वो आया,
हमने उसे कमरा दिखलाया,
मैडम को था, हाथ थमाया,
नन्हें ने फिर शोर मचाया।
जोर से पकड़ा उसने मुझको,
नहीं रहूँगा, मैं कभी यहाँ,
ये सब तो घर में नहीं हैं
जाऊँ हो मौज मस्ती जहाँ,
उसके रुदन से, डब-डब आँखों से,
मेरा मन भी था भर आया,
छुड़ा कर हाथ, थमा शिक्षा के
मन्दिर में, मैं छोड़ के आया।

माँ की वो संदूकड़ी

साल भर इन्तज़ार रहता,
मायके जाने का,
छुट्टियाँ होते ही, कुछ दिन
घर के काम-काज से चुराकर,
और भाई-बहनों संग प्रोग्राम
बनाकर, पहुँच ही जाते,
हम माँ के घर,
अपने गाँव में।
घर का कोना-कोना निहारती
दिखती माँ
समेटती छोटी-छोटी चीजें
हम सबको देने के लिये।
बटोरती कुछ सिक्के भी
बाँध लेती चुन्नी के कोने में,
आते ही गली से कोई भी आवाज़,
पुकारती बच्चों को, देती
अंटी से खोल कुछ पैसे, भागते
बच्चे, लाते सामान, खाते और
खिलखिलाते।
दिन बीत जाते, हम भी सामान बांधते,
देख हमें, माँ निकालती अपनी बरसों
पुरानी संदूकड़ी, जिसमें बाँधकर रखे हैं
हम सबके जोड़े, पुड़ियों में बंधे पैसे
मुन्ने के कंगन, गुड़िया की पायल।
एक-एक को पुकार कर देती,
खुश होती, बस दुआएँ देती,
मिलने जाते हम भी दूसरे कमरों में
वहाँ रहती है हमारी भाभियाँ
सामने वाले घर में दो चाचियाँ,
देखते ही हमको इक बनावटी मुस्कान,
पर्स से निकाल वो एक आध शगुन,
का नोट, कितना भारी लगता उन्हें,
दस बार अलमारी खोलती-बंद करतीं,
फिर कह देतीं, "तेरे लायक कोई कपड़ा
ही नहीं अलमारी में, सब....."
सोचती मैं कितनी अमीर है मेरी
माँ की वो जंग खाई पुरानी संदूकड़ी,
इन चमचमाती अलमारियों से
जिनमें से इक रूमाल भी नहीं
झाँकता लड़की को देने के लिए।